IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अज्ञेय काव्य में प्रकृति

अरुण कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, झारखण्ड

प्रकृति की चर्चा करते ही उसकी परिभाषा की बात उठ खडी होती है। हालांकि किसी विषय को परिभाषित करने के अपने खतरे होते हैं, इस बात की संभावना बनी रहती है कि परिभाषा की सीमा में बांधने की कोशिश में उस विषय के कुछ महत्वपूर्ण पहलू उसके बाहर ही छूट जायें या फिर किसी विषय के विस्तार की परिभाषा में बहुत घटा दिया जाए या इसके उलट उसे इतना अधिक विस्तृत कर दिया जाए कि सारा कुछ अस्पष्ट और अपरिभाषित ही रह जाए। अज्ञेय इन खतरों से अनजान नहीं हैं। तभी तो ये इस बात का जिक्र करते हैं। कि वैज्ञानिक, दार्शनिक, धर्म के तत्व के चिंतक – सभी अलग– अलग ढंग से इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि 'प्रकृति हम कहते किसे हैं अज्ञेय इस प्रश्न का स्वयं उत्तर देते हैं, लेकिन रूढ अर्थ में परिभाषा देने से अपने आपको बचाते हुए। ये सिर्फ कुछ मोटी रेखाएं खींचकर जैसे विषय को स्पष्ट कर देते हैं – ''साधारण बोल–चाल में 'प्रकृति' 'मानव' का प्रतिपक्ष है, अपति मानवेतर ही प्रकृति है – वह संपूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है। और भी स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है जो कि इन्द्रियगोचर जिसे हम देख, सुन और छू सकते हैं, जिसकी गंध पा सकते हैं और जिसका आस्वादन रर सकते''[1]

अज्ञेय का प्रकृति के साथ गहरा भावनात्मक लगाव है। वह सच्चे अर्थों में प्रकृति से प्रेम करते हैं। स्वभावतः उनका यही प्रेम फूलों के प्रति भी है। फूलों के प्रति भावनात्मक लगाव का एक रूप 'साम्राज्ञी का नैवेध दान' में देखा जा सकता है। जापान की साम्राज्ञी कोमियों बुद्ध–मंदिर में पूजा के लिए खाली हाथ गयीं। उनका मन इस बात के लिए तैयार नहीं हुआ कि जो फूल किसी भोली मुग्धा की तरह डाल से लगा जीवन के सूखी–क्षण का उपभोग कर रहा है उसे उससे विलगाकर बुद्ध की मूर्ति पर चढ़ाया जाय–

जो मुझे सुनाती

जीवन के विह्वल सुख–क्षण का गीत –

खोलती रूप जगत के द्वार जहाँ

तेरी करुणा

सुनती रहती है

भव के सपनों, क्षण के आनन्दों में

रह सूत्र अविराम –

उस भोली मुग्धा को

कंपती डाल से विलगा न सकी।

कहने की जरूरत नहीं कि फूल न तोड़ पाने का यह प्रेम–भरा असमंजस साम्राज्ञी के ब्याज से अज्ञेय के प्रेम को भी व्यंजित कर जाता है।''[2]

प्रकृति ईश्वर की अनूठी सर्जना है। उस में कलात्मकता है। सर्जना के प्रति उमंग का भाव जगाती है, हमारे अपने सर्जनात्मक ओध को धारदार बनाती है अर्थात हम अपने को उसके भीतर देखते हैं। उसको अपने भीतर देखते हैं। यह चेतना का विस्तार और विशदीकरण है। प्रकृति में लय है, गति है, उससे समरस होना या हो पाना रचनाकार का धर्म है और उसका गौरव है। लय और गति के विभिन्न रूपों के प्रति अज्ञेय के मन में सहज आकर्षण शुरू से रहा है। यह उनके संस्कार का अंग है।

हरी घास–हरीतिमा प्रकृति की अनंत विभूतियों में से एक है। मानव के लिए प्रकृति का यह उन्मुक्त वरदान है। प्रकृति केवल हमारा स्नेह और संरक्षण मांगती है। यह हमें खुले और खिले रहने का संदेश देती है तथा ब्रह्माण्डीय सत्ता का बौध बराती है जैसा कि अथर्व के मंत्र में कहा गया है। इस पृष्ठभूमि में अज्ञेय अनुभव करते हैं

हो प्रकृतस्थः तनो मत कटी–छँटी उस बाड़ सरीखी,

नमो, खुल खिलो, सहज मिलो

अन्तः स्मित, अन्तः संयत हरी घास – सी।

और ;

केवल बना रहे विस्तार–हमारा बौध मुक्ति का,

सीमाहीन खुलेपन का ही।''[3]

यही इस रचना का संदेश भी है। स्पष्ट है, कि प्रकृति का आनंद प्राकृतिक अवस्था में ही उठाया जा सकता है। प्रकृति का रूप अपने–आप में एक बड़ी कला है, वह प्रेरणा का आदि–स्रोत है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, वर्ड़सवर्थ इसके प्रमाण हैं।

अज्ञेय के लिए फूल का खिलना नये जीवन का प्रतीक है। किंतु, जब वही किसी महानगर में, लोहे और कंकरीट के जालों के बीच बिना किसी मदद के अपने–आप खिल उठता है तो वह विकट जीवन–संघर्ष का प्रतीक बन जाता है।

''लोहे और कंकरीट के जाल के बीच

पत्तियों रंग बदल रही हैं।

एक

दुःसाहसी

हेमन्ती

फूल खिला हुआ है।

आगे यह 'दुःसाहसी हेमन्ती–फूल' घोषणा करता है

मेरा युद्ध

प्रकृति की सृष्टियों से नहीं

मानव की

अपसृष्टियों से है।

शैतान

केपल शैतान से लड़ सकता है।

हम अपने अस्त्र चुन सकते हैं : अपना

शत्रु नहीं। वह हमें

चुना–चुनाया मिलता है।''[4]

दुःसाहसी हेमन्ती–फूल के संघर्ष की यह दिशा, इस में स्वयं कवि की अपनी परस्परता को भी संधर्ष स्पष्ट करती है। आज जब आधुनिक औद्योगिक–सभ्यता का विकास अक्सर प्रकृति की कीमत पर हो रहा है और आधुनिक मानव का न सिर्फ प्रकृति के साथ साहचर्य खत्म हो चुका है, बल्कि उसके साथ उसका सामंजस्य भी टूटता जा रहा है – तब इस संदर्भ में मानव की अपसृष्टियों के विरुद्ध हेमन्ती फुल के संघर्ष के साथ कवि की यह प्रतिबद्धता कितनी सार्थक और महत्वपूर्ण है, यह कहने की जरूरत नहीं है।

एक और प्रकृति का आर्थिक दोहन–शोषण हैं तो दूसरी ओर 'आधुनिक मशीनी संस्कृति' का हमला है जिससे लोक–संस्कृति के सामने खतरे उत्पन्न हो गए हैं। अज्ञेय अपनी कविताओं में इसके प्रति चिंतित दिखते हैं, इसलिए ये कहते हैं–

कुछ भूख, कुछ अज्ञान, कुछ लोभ में

अपनी सम्पदा हम रहे हैं खाते।

जिन्दगी में जो रहा नहीं

याद उसकी

बिसूरते लोक गीतों में

कहाँ तक रहेंगे संजोते ?

जब प्राकृतिक सम्पदा ही नहीं रहेंगी तो उससे जुड़े लोकगीत भी धीरे–धीरे बिसरा ही दिए जायेंगे। 'आधुनिक मशीनी संस्कृति' का हमला एक दूसरे रूप में अधिक प्रत्यक्ष और आक्रामक है– जिसकी विस्तार से चर्चा अज्ञेय ने अपनी पुस्तक 'अरे यायावर रहेगा याद' के एक लेख 'मौत की घाटी' में किया है। आधुनिक सभ्यता की संस्कृति में दीक्षित लोग वहाँ पहुंचकर अपनी गंदी मानसिकता और रोग के जीवाणु फैलाते हैं ऊपर से उन्हें आधुनिक सुसंस्कृत बनाने का दम भरते हैं।''[5] डॉमिनेट कल्चर या पावर कल्चर का छोटी–छोटी संस्कृतियों पर यह हमला आज के बुद्धिजीवियों के बीच चिंता का गंभीर विषय बना हुआ है। अज्ञेय अपने रचनात्मक–जीवन के सहयोगी की आरंभ से ही इन प्रश्नों पर एक भूमिका में नजर आते हैं।

अज्ञेय हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण कवि और लेखक हैं। उनके काव्य में प्रकृति का विशेष महत्व है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति का वर्णन केवल सौंदर्य के रूप में नहीं बल्कि एक गहन और दार्शनिक दृष्टिकोण से किया गया है। उनकी कविताओं में प्रकृति और मानव का आपसी संबंध प्रमुख है। वे प्रकृति के माध्यम से जीवन और मानव अस्तित्व की गूढ बातों को प्रकट करते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के विभिन्न प्रतीक (यथा–पर्वत, नदियों, पेड़, फूल आदि) मिलते हैं जो न केवल प्राकृतिक दृश्य उजागर करते हैं बल्कि गहरे भावनात्मक और दार्शनिक संदेश भी देते हैं। वे प्रकृ ति के माध्यम से समाज, जीवन और मनुष्य के अंतर्निहित संघर्षों और विरोधाभासों को प्रस्तुत करते हैं। अज्ञेय की कविताओं में एक प्रकार की पर्यावरणीय चिंता भी देखी जा सकती है। वे प्राकृतिक सौंदर्य और इसके संरक्षण के महत्व को उजागर करते हैं। वे मानते थे कि प्रकृति का संरक्षण और इसके साथ सामंजस्य बनाकर चलना अत्यंत आवश्यक है जो वर्तमान की आवश्यकता भी है।

संदर्भ सूची :

1. कुमार, संजय, अज्ञेय प्रकृति–काव्य काव्य–प्रकृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2012, पृ. 11–12
2. वही, पृ. 20–21
3. पाण्डेय, डॉ. सुरेश चन्द्र, अज्ञेय साहित्य विमर्श (खण्ड–1), नमन प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण– 2010, पृ. 259
4. कुमार, संजय, अज्ञेय प्रकृति–काव्य काव्य–प्रकृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2012, पृ. 24
5. अज्ञेय, मौत की घाटी में, अरे यायावर रहेगा याद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण–1986, पृ. 134–135